8
यीशु क्यों मरा?

यीशु कैसे मरा, के प्रश्न की खोज करने के बाद हमें इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहिए कि वह क्यों मरा? ऐसी भयंकर मृत्यु के लिए, जिसके साथ इतने कष्ट थे, उसने क्या किया? क्या उसने इस सबके होने के लिए कुछ किया? क्या यीशु की मृत्यु के लिए किसी को दोषी ठहराया जा सकता है, यदि हां तो किसे?

इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रयास में हमें इसे ऐतिहासिक और धर्मशास्त्रीय दोनों दृष्टिकोणों से देखना होगा। ऐतिहासिक दृष्टिकोण यह है कि वे कौन सी परिस्थितियां थीं, जो उसकी मृत्यु का कारण बनीं? धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण यह है कि वह क्या कारण था कि उसे मरना ''आवश्यक'' था (जैसे उसने स्वयं कहा; लूका 9:22; 24:45-47)? उसकी मृत्यु से क्या प्राप्त हुआ?

यीशु की मृत्यु के ऐतिहासिक कारण

मनुष्य की बनाई यहूदी परम्पराओं का तिरस्कार

पहले यीशु की मृत्यु के ऐतिहासिक कारणों को देखते हैं। मरकुस 3:1-6 लिखता है कि गलील की अपनी आरम्भिक सेवकाई में यीशु द्वारा धार्मिक अधिकारियों से सवाल पूछे जाने और उनके जवाब न दे पाने और उनकी आत्मिक समझ की कमी का पता चल जाने पर वे चिढ़ गए थे। आराधनालय में एक दिन यीशु को एक सूखे हाथ वाला व्यक्ति मिला। उस व्यक्ति की दशा के प्रति लापरवाह, धार्मिक अगुवे इस बात को देखने की राह देखते थे कि यीशु उसे चंगाई देकर सबत को ''तोड़ता'' है या नहीं। यीशु ने मानवीय आवश्यकता के रूप में उस आदमी को उनके सामने खड़ा किया और उनसे पूछा कि सबत के दिन भला करना अच्छा है या बुरा करना, किसी की जान बचाना अच्छा है या हत्या करना। अपने आप को कठोर मनों वाले पर अपने ही नियमों को तोड़ने वालों के रूप में न दिखाने की इच्छा से, वे खामोश रहे। यीशु को क्रोध आया और उनके मन की कठोरता पर अफसोस हुआ और उसने उस आदमी को चंगा किया। स्वाभाविक रूप में इससे फरीसियों को बुरा लगा और मरकुस 3:6 कहता है ''तुरन्त हेरोदियों के साथ उसके विरोध में सम्मति करने लगे, कि उसे किस प्रकार नाश करें।'' यीशु के प्रति उनकी नाराज़गी की गहराई का पता इस तथ्य से चलता है कि यह दोनों गुट उसके विरोध में इकट्ठे हो गए, जबकि आम तौर पर वे एक दूसरे के साथ झगड़ते रहते थे। फरीसी यहूदियों का एक गुट था जो व्यवस्था को कठोरता से मानने की वकालत करते थे और जो यहूदी लोगों के ऊपर यूनानी-रोमी संस्कृति के थोपे जाने का विरोध करते थे। हेरोदी, जैसा कि नाम से संकेत मिलता है, हेरोदेस की नीतियों के धनवान समर्थक थे, जिसमें रोमियों के साथ सहयोग करने वाले भी थे। दोनों गुट एक दूसरे को तुच्छ मानते थे पर यीशु का विरोध करने के लिए दोनों इकट्ठे हो गए। उसके सार्वजनिक जीवन

के आरम्भिक चरण में भी धार्मिक अधिकारी उसे नष्ट करना चाहते थे।

यहूदियों के साथ ज़बानी लड़ाइयां

यह परिस्थिति अपने जीवन के अन्तिम सप्ताह में यीशु के यरूशलेम में प्रवेश करने पर ही बिगड़ी। मत्ती 22:15-46 में यीशु और यहूदी मत के भीतर पाए जाने वाले कई धड़ों के प्रतिनिधियों के बीच झगड़ों की शृंखला मिलती है। वे उसे गिरफ़्तार करने और मृत्यु दण्ड देने के योग्य कोई बात कहने में उसे फंसाने के प्रयास में रहते थे, परन्तु हर बार वह उनके प्रयासों को धत्ता बताकर उनकी आत्मिक सोच के सतही होने को दिखाता रहा। ऐसे पहले मुकाबले में, फरीसियों और हेरोदियों ने वही रखा जो उन्हें लगा होगा कि उसे फंसाने के लिए आवश्यक है। उन्होंने उससे कैसर को कर देने की वैधानिकता के बारे में पूछा। यदि यीशु इस बात की पुष्टि कर देता कि कर देना फर्ज़ है, तो वह लोगों का पक्ष शीघ्र ही खो देता, जो अपने ऊपर प्रधान बने रोमियों को तुच्छ मानते थे। यदि वह कहता कि कर न दिया जाए, तो वह उस पर रोमी अधिकारियों के सामने सरकारी आरोप लगा सकते थे कि वह विद्रोही है। यीशु के उत्तर ने उन्हें लाजवाब कर दिया और कुछ कुछ परेशान भी किया होगा। उसने कहा, ''जो कैसर का है वह कैसर को, और जो परमेश्वर का है परमेश्वर को दो'' (मरकुस 12:17; लूका 20:25)।

यहूदियों के अन्य घुटों के प्रतिनिधियों ने भी यीशु को फंसाने की कोशिश की पर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में प्रधान याजकों और लोगों के पुरनियों ने यीशु को गिरफ़्तार करने और लोगों के बीच दंगा भड़काने का कारण बने बिना उसकी हत्या करने की योजना बनाई (मत्ती 26:3-5)। उन्हें सावधान रहना था क्योंकि यह फसह का मौसम था। यरूशलेम उस बड़े पर्व को मनाने के लिए आए यात्रियों से भरा पड़ा था, और यह समय हमेशा मसीहा से जुड़ी उम्मीदों और बेचैनी बढ़ाने का होता था। लोगों के बीच में गम्भीर गड़बड़ करने के लिए अधिक मेहनत करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनमें से अधिकतर यीशु को मसीहा नहीं नबी मानते थे। यदि धार्मिक लोग दंगा भड़का देते तो रोमियों ने हर किसी के साथ कठोरता से व्यवहार करना था।

यहूदी अगुओं के साथ यीशु की ज़बानी जंगें ही केवल उसकी मृत्यु का कारण नहीं बनी। यरूशलेम में आगमन पर उसे मन्दिर में जाना था और पैसे का कारोबार करने वालों और पशुओं को बेचने वालों को ''अन्यजातियों के आंगन'' में से निकालना था (मरकुस 11:15-18)। आम तौर पर जिसे मन्दिर की ''सफ़ाई करना कहा जाता है वह एक साहसी कार्य था, जिससे धार्मिक अगुवे, विशेषकर प्रधान याजक और ग्रंथी भड़क गए जो मन्दिर और इसकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखते थे। यीशु के कार्यों से मन्दिर और इसके मामलों में उनके प्रबंध को गलत ठहराने का संकेत ही नहीं, बल्कि इस पर अधिकार होने का दावा भी था। मरकुस 11:18 में कहा गया है कि ''सब लोग'' यानी आराधना करने वाले आम लोगों की भीड़ ''उसके उपदेश से चकित होते थे।'' लोगों पर इस प्रभाव ने यहूदी अधिकारियों की नज़र में यीशु को बहुत खतरनाक आदमी बना दिया।

यहूदी अगुओं के विरुद्ध शिक्षाएं

अन्त में यीशु की मृत्यु के कारकों में से एक वह दृष्टांत था जो उसने दाख की बारी के

बारे में बताया था, ''दुष्ट किसानों का दृष्टांत'' (मत्ती 21:33-41; देखें मरकुस 12:1-12; लूका 20:9-19)। ऊपर से यह एक आम कहानी की तरह लग सकता है, जिसने दाख की बारी का रूपक अशुद्ध अतिरिक्त अर्थ देता है विशेषकर दिए गए मौसम में। कहानी एक आदमी की थी जिसमें दाख की बारी लगाई, इसे ठेकेदारों को ठेके पर दे दिया, फिर किसी दूर देश में चला गया। जब उसने फसल का अपना बनता भाग लेने के लिए सेवकों को भेजा तो उन्हें पीटा गया। कइयों को किराएदारों ने मार डाला। दूसरी बार जाने पर भी यही हुआ। अन्त में उसने अपने ही बेटे को भेज दिया, यह सोचकर कि किराएदार उसका आदर करेंगे और उसका विरोध नहीं करेंगे। इसके बजाय उन्होंने यह सोचकर कि वारिस को ही रास्ते से हटा दिया जाए तो दाख की बारी किसी न किसी प्रकार उनकी हो जाएगी, उसे भी मार डाला। दृष्टांत के अन्त में यीशु ने कहा, ''इसलिए जब दाख की बारी का स्वामी आएगा, तो उन किसानों के साथ क्या करेगा?'' बिना किसी हिचकिचाहट के उन्होंने उत्तर दिया ''उन बुरे लोगों को बुरी रीति से नष्ट करेगा; और दाख की बारी का ठेका दूसरे किसानों को दे देगा जो समय पर फल दिया करेंगे।'' इस दृष्टांत का महत्व और उनका उत्तर इस तथ्य में है कि पुराने नियम में इस्राएल को कई बार नबियों द्वारा परमेश्वर की ''दाख की बारी'' कहा गया था (यशायाह 5:1-7; देखें यिर्मयाह 2:21)। यह विचार कि दाख की बारी को लेकर दूसरे किसानों को दे दिया जाएगा यहूदी राष्ट्रीयता के लिए नया नहीं था और विशेषकर इसके अगुओं को धमकी था। आयत 43 में यीशु ने बिल्कुल यही कहा, ''इसलिए मैं तुम से कहता हूं, कि परमेश्वर का राज्य तुम से ले लिया जाएगा; और ऐसी जाति को जो उसका फल लाए, दिया जाएगा।'' धार्मिक अगुओं पर इसका असर त्वरित था: ''महायाजक और फरीसी उसके दृष्टान्तों को सुनकर समझ गए, कि वह हमारे विषय में कहता है। और उन्होंने उसे पकड़ना चाहा, परन्तु लोगों से डर गए क्योंकि वे उसे भविष्यवक्ता जानते थे'' (मत्ती 21:45, 46)।

एक मित्र द्वारा पकड़वाया जाना

अन्ततः यीशु को अपने ही लोगों में से एक यहूदा इस्करयोती की सहायता से गिरफ़तार कर लिया गया। यूहन्ना 18:31 कहता है कि यहूदी लोग रोमियों की सलाह के बिना किसी को कानूनी तौर पर मृत्यु दण्ड नहीं दे सकते थे, जिस कारण उन लोगों ने यीशु के विरुद्ध ऐसा आरोप ढूंढ़ने का प्रयास किया जिससे मुकद्दमे के लिए पिलातुस को उसे सौंपने में वे सही ठहरें। (इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने कभी उस व्यवस्था को तोड़ा नहीं, परन्तु प्रेरितों 7:54-8:1 वाली घटना भीड़ की कार्यवाही थी न कि मृत्युदण्ड का कानूनी ढंग।) मत्ती 26:57-68 कहता है कि गतसमनी में अपनी गिरफ़तारी के बाद यीशु को महायाजक काइफा के घर ले जाया गया था, जहां उससे स्पष्टतया यहूदी धार्मिक अगुओं की जमा हुई भीड़ ने सवाल किए थे। इस सुनवाई पर यीशु को परमेश्वर की निंदा करने के धार्मिक आरोप में दोषी बनाया गया था, और सम्भवतया इस कारण नहीं कि उसने अपने आपको होने वाला मसीहा कहा था। मसीहा होने का दावा करना किसी भी प्रकार से धार्मिक अपराध नहीं था। 26:64, 65 के अनुसार परमेश्वर की निंदा करने का आरोप यीशु की इस बात से लगाया गया कि वह केवल मसीहा ही नहीं है बल्कि वे उसे ''सर्वशक्तिमान [परमेश्वर] के दाहिनी ओर बैठे, और आकाश के बादलों पर आते'' देखेंगे।

ईश्वरीय स्थिति के इस स्पष्ट दावे के कारण महायाजक को परन्तु आदेश देना पड़ा, ''यह वध होने के योग्य है'' (आयत 66)!

पक्षपाती पेशियां

मृत्युदण्ड के लिए यीशु के मार्ग पर अगला पग पिलातुस के सामने उसकी पेशी थी। धार्मिक अधिकारियों को यह समझ आ गया था कि परमेश्वर की निंदा करने के उनके आरोप में पिलातुस की कोई दिलचस्पी नहीं है। उन्होंने यीशु पर विद्रोही नेता होने का आरोप लगाया (लूका 23:1-5)। विशेषकर उन्होंने उस पर कैसर को कर देने से मना करने (जो उसने नहीं किया था) और राजा होने का आरोप लगाया। उन्हें मालूम था कि इन दोनों आरोपों की जांच पिलातुस द्वारा की जाएगी, जिसकी राज्यपाल के रूप में मुख्य ज़िम्मेदारी रोम की रुचियों की देखभाल करना है। सुसमाचार के चारों वृत्तांतों के अनुसार पिलातुस ने बड़ी जल्दी यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यीशु के प्रति उनकी शत्रुता का वास्तविक कारण ये आरोप नहीं थे। (यहूदियों ने कभी *रोम की* भलाई में दिलचस्पी नहीं ली थी!) इस कारण पिलातुस ने यीशु को छोड़ देना चाहा। परन्तु अन्त में वह उनकी धमकी से डर गया कि यदि वह विरोधी दावेदार को ज़िदा रहने दे तो उसी पर कैसर के प्रति बेईमान होने का आरोप लगाया जा सकता है (यूहन्ना 19:12)। पिलातुस अपने ऊपर ऐसा आरोप लगाए जाने का जोखिम नहीं ले सकता था। बेशक वह यीशु के निर्दोष होने को समझता था, पर शीघ्र ही उसने निष्कर्ष निकाला कि अपनी ओर यीशु की जान बचाने पर किसी एक को चुनने पर यीशु को मरना आवश्यक है। ''तब उस ने उसे उन के हाथ सौंप दिया ताकि वह क्रूस पर चढ़ाया जाए'' (यूहन्ना 19:16)।

एक कमज़ोर हाकिम

कुछ लोगों को संदेह है कि पिलातुस इस प्रकार से यहूदियों की गुंड़ागर्दी से डर गया हो। पिलातुस यहूदियों को पसन्द नहीं करता था जिन पर वह शासन करता था, और वे भी उससे घृणा करते थे; परन्तु प्रमाण यह सुझाव देता है कि वास्तव में वह उससे अपनी इच्छा मनवाने का दबाव डाल सकते थे। 26 ईस्वी में उसके फलस्तीन में आने के तुरन्त बाद पिलातुस ने सम्राट की मूर्तियों वाले रोमी मानक यरूशलेम में लाकर यहूदियों का क्रोध भड़का दिया था। यहूदी संवेदनाएं ''उकरी हुई मूर्तियों'' को घृणित मानती थी। पांच दिन और रात तक एक शिष्टमण्डल में पिलातुस के पास उन मानकों को हटाने की अपील की और छठे दिन पिलातुस ने अपने सिपाहियों को अपनी तलवारें निकालने का आदेश दे दिया। यहूदी लोग अपनी व्यवस्था को तोड़ने के बजाय मर जाने को स्वीकार करने को तैयार थे। इस डर से की कि इतनी हत्याओं से इतने पवित्र मुद्दे पर बड़ा विद्रोह हो सकता है पिलातुस नम्र पड़ गया और उसने यरूशलेम से मूर्तियां हटा दीं।[1] पिलातुस को यहूदियों को प्रसन्न करने की चिंता नहीं थी, परन्तु वह इतना सिद्धांतहीन था कि किसी मुश्किल से अपने आपको बचाने के लिए वह किसी की भी कुर्बानी दे सकता था।

बहुपक्षीय उत्तर

फिर ऐतिहासिक तौर पर कहें तो यीशु क्यों आया? इसका उत्तर बहुपक्षीय है। वह इसलिए

मरा क्योंकि उसने यहूदी मत के धार्मिक अगुओं का क्रोध भड़का दिया था। वह इसलिए मरा क्योंकि उसने मन्दिर के साथ-साथ यहूदी संस्थानों की कुछ अति पवित्र चीज़ों पर अधिकार का दावा किया था। वह इसलिए मरा क्योंकि उसने उस समय के यहूदी सिस्टम के खत्म हो जाने की भविष्यवाणी की थी कि अन्नत: इसका पतन हो जाएगा। वह इसलिए मरा क्योंकि उसके कुछ समकालीन (जिनके पास धार्मिक शक्ति थी) उसे परमेश्वर का निंदक मानते थे। वह इसलिए मरा, क्योंकि उस पर विद्रोह का आरोप लगाया गया और क्योंकि रोमी राजपाल, जिसे मालूम था कि यीशु को राजनैतिक या सैनिक खतरा नहीं है, दबाव के आगे इतना कमज़ोर था कि वह उसकी मृत्यु को रोक न पाया। ये सभी बातें ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा प्रमाणित हैं।

क्या दोष ''यहूदियों'' का है?

नये नियम (सुसमाचार की पुस्तकों ही नहीं बल्कि विशेषकर चार पुस्तकों) पर ''यहूदी विरोधी''[2] होने का आरोप लगाया जाता है जिसने मसीहियत के परम्परागत शत्रुओं अर्थात यहूदियों पर दोष लगाने के लिए जो वास्तव में हुआ उसे तोड़-मरोड़ कर पेश किया। एक दावा है कि पिलातुस और रोमी लोग दोषी थे; कुछ तो यह भी सुझाव देते हैं कि यहूदी अधिकारियों ने वास्तव में यीशु को बचाने की कोशिश की परन्तु पिलातुस खून का इतना प्यासा था कि उसने उसकी मृत्यु से बदला लिया। इसके अलावा सुसमाचार की पुस्तकों को घृणा करने वाले लोगों द्वारा यह दिखाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है कि यहूदी लोग मसीह के हत्यारे हैं और उन पर जो भी दोष लगे कम हैं। क्या सुसमाचार की पुस्तकें वास्तव में यही कहती हैं? क्या वे यहूदी विरोधी हैं?

इस तथ्य का कि सुसमाचार की पुस्तकों में यहूदी विरोधी कारणों को बढ़ावा देने के लिए इस्तेमाल किया गया है का अर्थ यह *नहीं* है कि वे यहूदी विरोधी ही हैं। सुसमाचार की पुस्तकों में हो सकता है कि कई यहूदियों को बहुत सकारात्मक रोशनी में न दिखाया गया हो क्योंकि मुख्यतया वे यीशु के यहूदी विरोधियों की बात करती हैं। परन्तु वे सभी यहूदियों को एक ही तरह से नहीं दिखाती हैं, जो यहूदी धर्म के विरोधी होने के आरोप को पक्का करने के लिए परिभाषा से ही आवश्यक होगा।

वास्तव में सुसमाचार की पुस्तकों में कुछ यहूदियों को बड़े ही सकारात्मक प्रकाश में दिखाया गया है। सुसमाचार के चारों वृत्तांतों में अरिमत्तिया के यूसुफ़ का उल्लेख है जो यहूदी समुदाय का एक अगुआ और उसी यहूदी सभा (महासभा) का सदस्य था जिसने यीशु को दोषी ठहराया था, उसने यीशु की लाश को दफ़नाने के लिए उसे पिलातुस से मांगा था। उसको देखते हुए जो यीशु के साथ हुआ था और जो उसके साथ हमदर्दी रखने वाले किसी भी व्यक्ति के साथ हो सकता था, यह साहसी और परोपकारी कार्य था (मत्ती 27:57-61; मरकुस 15:42-47; लूका 23:50-56; यूहन्ना 19:38-42)। इस काम में यूसुफ़ की सहायता निकुदेमुस ने की थी जिसे ''यहूदियों का सरदार'' और ''इस्राएलियों का [एक नहीं, जैसा कि कई अनुवादों में है] गुरु'' कहा गया है। निकुदेमुस ने पहले महासभा को बिना उपयुक्त सुनवाई के यीशु को दोषी ठहराने पर चुनौती दी थी (यूहन्ना 3:1, 10; 7:50-52)।

सुसमाचार के यूहन्ना के वृत्तांत में यीशु के विरोधियों को ''यहूदी'' कहा गया है जो इस

आरोप का कारण बना है कि यूहन्ना ने सब यहूदियों (उनके वंशजों पर भी) यीशु की मृत्यु का दोष लगाया है। परन्तु पहली सदी के *यहूदी* इतिहासकार जोसेफ़स ने उन जेलोतेसों के बारे में लिखने के लिए जिन्होंने रोम का सामना किया था और उस कारण सत्तर ईस्वी में यरूशलेम का विनाश हो गया था, इसी शब्दावली का इस्तेमाल किया है। उसने पूरी पराजय का दोष ''यहूदियों'' पर लगाया है, जो स्पष्टतया यही संकेत देता है कि केवल वही यहूदी जिम्मेदार थे जिन्होंने रोम का विद्रोह करने में अगुआई की थी।[3] यूहन्ना ने इस शब्द का इस्तेमाल इसी प्रकार से किया। इसी प्रकार पुराने नियम के इब्रानी नबियों ने अविश्वासी और विद्रोही यहूदियों को दोषी ठहराया। शब्दों का यह इस्तेमाल न तो सुसमाचार और न ''यहूदी विरोधी'' व्यवहार में है। (कई उदाहरणों में से एक के लिए, मलाकी की पूरी पुस्तक देखें।)

इस सम्बम्ध में विशेष रुचि मत्ती 27:25 में है। पिलातुस द्वारा यीशु से ''अपने हाथ धोए'' (आयत 24) जाने के बाद लोग (प्रधान याजक और पुरनियों के प्रभाव में) पुकार उठे, ''इसका लहू हम पर और हमारी संतान पर हो!'' इस आयत का अर्थ यह निकाला गया है कि हर युग के सभी यहूदी सामूहिक तौर पर यीशु की मृत्यु के ज़िम्मेदार हैं। परन्तु इस आयत की ''सामूहिक दोष'' की व्याख्या पूरी तरह से बिना गुण के है। परमेश्वर के इस श्राप का समर्थन करते या नये नियम के किसी भी लेखक द्वारा ऐसे विचार का सुझाव देने की कोई बात नहीं है। मत्ती ने केवल इतना लिखा कि यह लोगों ने कहा था, और इसे वहीं छोड़ दिया जाना चाहिए।

हमें याद रखना चाहिए कि यीशु का क्रूस पर चढ़ाया जाना एक यहूदी की कहानी है जिसे यहूदियों द्वारा मारे जाने के लिए दे दिया गया था, जैसा कि यहूदी लेखकों द्वारा लिखा गया है (नये नियम के एकमात्र अन्यजाति लेखक, लूका के अपवाद के साथ)। ''यहूदी विरोध'' होने के आरोप में कोई दम नहीं है, क्योंकि यीशु और उसके आरम्भिक अनुयायी यहूदी ही थे। सुसमाचार की पुस्तकों की सामग्री उन विशेष लोगों के संदर्भ में जिन्होंने यीशु का विरोध किया यहूदियों के प्रति नकारात्मक है। इसे सदंर्भ में से निकालकर आज के यहूदियों के विरोध में इस्तेमाल करने का अर्थ इतिहास और पवित्र शास्त्र की सही व्याख्या दोनों को नज़रअन्दाज़ करना है।

हम किसी परिकथा की बात नहीं कर रहे हैं जिसकी व्याख्या हम अपने अध्यात्मिक, राष्ट्रीय या भावनात्मक इच्छाओं पर आधारित जो चाहें कर लें। बल्कि यीशु की मृत्यु इतिहास की एक घटना है, जिसकी पहली और दूसरी सदी के यहूदी और गैर यहूदी दोनों स्त्रोतों से पुष्टि की गई है। हमें इतिहास दोबारा लिखने की छूट नहीं है, चाहे हमें अपने आपको कितना भी बुरा क्यों न लगे। जैसा कि किसी ने बड़ा अच्छा कहा है, इतिहास को बदलने की कोशिश का अर्थ इसे खो देना है, यदि हम ने इसे अपनी निजी पसन्द के अनुकूल बनाने के लिए दोहराया है, तो जो कहानी वास्तव में घटी थी वह खो जाएगी। सारी मनुष्यजाति के छुटकारे के लिए मसीह के आत्मबलिदान करने वाले प्रेम की कहानी ही यीशु की कहानी है। यह ''यीशु को किसने मारा'' की उतनी कहानी नहीं जितनी ''यीशु कौन है और वह क्यों मरा'' की है।

इसके साथ ही इस कहानी में उसके शत्रुओं के योगदान की बात है जिन्होंने उसकी मृत्यु में सहयोग दिया और उनके योगदान की जिन्होंने वास्तव में उसे मारा। इसके बिना कहानी को बताने का कोई और तरीका ही नहीं है। जो कुछ हुआ उस वृत्तांत को सम्मिलित करने का अर्थ किसी भी प्रकार से पूरे समूह को दोषी ठहराना नहीं (निश्चित रूप से उनके वंशजों को भी नहीं), और

न ही यह किसी पूर्व धारणा या घृणा की कोई अनुमति देता है।

यीशु सेमिनार जैसे कुछ संदेहवादियों द्वारा प्रस्तुत किया गया यीशु का चित्रण यीशु की मृत्यु के ऐतिहासिक तथ्य से न्याय नहीं कर सकता। उनकी अलौकिक विरोधी मान्यताओं के आधार पर और उसे निकालने के प्रयास में जिसे वे सुसमाचार की पुस्तकों का ''यहूदी विरोधी'' कहते हैं, यह आलोचक सुसमाचार की पुस्तकों को यीशु के परमेश्वर होने और मसीहा होने और प्रभु होने के सभी दावों को छीन लेते हैं। इसके बजाय वे उसे एक घुमक्कड़ रहस्यवादी के रूप में दिखाते हैं जिसने अच्छी-अच्छी कहानियां बताई, बच्चों को आशीष दी और कभी किसी को ठोकर न देने की बात नहीं कही। ऐसा करके वे उसकी मौत का मज़ाक बनाते हैं।

पिलातुस के हाथों यीशु की मृत्यु (और यहूदी धर्मतन्त्र की ज़िद) उसके बारे में सबसे पक्के ऐतिहासिक तथ्य हैं। मसीही और गैर मसीही दोनों स्रोतों से इतना ही प्रमाणित हुआ है। यदि यीशु ने उनमें से कोई दावा नहीं किया जो सुसमाचार की पुस्तकें बताती हैं कि उसने अपने लिए किया, तो हम हैरान होते हैं कि फिर कोई उसे मारने की इच्छा क्यों करेगा।

यीशु की मृत्यु के धर्मशास्त्रीय कारण

यीशु की मृत्यु के कारणों के दूसरे सैट की पुष्टि इतिहास से नहीं की जा सकती। बल्कि वे विश्वास की बातें हैं और उन्हें ऐतिहासिक साधनों से न तो प्रमाणित किया जा सकता है और न अप्रमाणित। उन पर विचार करते हुए याद रखें कि वही स्रोत जो हमें यीशु की मृत्यु के ऐतिहासिक कारण देते हैं, हमें यह कारण भी देते हैं। हमने देखा है कि इन स्रोतों का समर्थन बाहरी गवाही से होता है, इसलिए यह मानने का अच्छा कारण है कि वे धर्मशास्त्रीय रूप में और ऐतिहासिक रूप में हमें क्या बताते हैं। आप यीशु की मृत्यु के धर्मशास्त्रीय कारणों के बारे में ससुसमाचार की बात को मानने का निर्णय लेते हैं या न मानने का, कम से कम यह मानना आवश्यक है कि उसके विषय में आरम्भिक मसीही यही मानते थे। धर्मशास्त्रीय अर्थ में कहें तो यीशु क्यों *मरा*?

उसके उद्देश्य को पूरा करना

यीशु ने स्वयं कहा कि यह ''आवश्यक'' था कि वह क्रूस पर मरे। उसका कहने का क्या अर्थ था? उसने कहा, ''मनुष्य के पुत्र के लिए आवश्यक है कि वह बहुत दुख उठाए, पुरनियें और महायाजक और शास्त्री उसे तुच्छ समझकर मार डाले, और वह तीसरे दिन जी उठे'' (लूका 9:22)। यह बात कहने के लिए उसने एक छोटे यूनानी शब्द (dei, *dei*) बहुत देने के थे में ''आवश्यक है'' है। यह ईश्वरीय व्यवस्था यानी परमेश्वर की इच्छा, भीतरी विवशता या परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार हो सकती है। यीशु के मामले में यह सब और इससे भी बढ़कर था। यीशु की मृत्यु कोई संयोग नहीं था या कोई ऐसी घटना नहीं थी जिससे वह बचना चाहता हो। इसके बजाय उसने इसे ईश्वरीय आवश्यकता के रूप में देखा जिसकी ओर उसका समस्त जीवन बढ़ रहा था। (अन्य दो ''दुख भोगने की भविष्यवाणियां'' देखें, जैसा कि लूका 9:44 और 18:31-33 में उन्हें कहा गया है।) मरने के समय, यीशु ने कहा, ''पूरा हुआ है!'' (यूहन्ना 19:30)। क्या ''पूरा हुआ'' था? अपनी मृत्यु के द्वारा उसने क्या पूरा किया?

नई वाचा को स्थापित करने के लिए

मत्ती 26:26-28 इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आवश्यक वचन है। यीशु ने अपने चेलों के साथ अन्तिम भोज खा लेने के बाद, रोटी और दाखरस लेकर उन में बांट दिया। रोटी उसकी ''देह'' का प्रतीक थी। कटोरे के लिए उसने कहा कि यह ''नई वाचा में मेरा वह लहू है जो बहुतों के पापों की क्षमा के लिए बहाया जाता है।'' इसमें से दो विचार निकलते हैं। एक यह है कि यीशु ने अपनी मृत्यु को परमेश्वर और उसके लोगों के बीच ''नई वाचा'' की स्थापना के माध्यम के रूप में देखा। जैसे जानवरों का लहू बहाने के द्वारा ''पुरानी वाचा'' बांधी गई थी, वैसे ही मसीह की नई वाचा उसका अपना लहू बहाए जाने के द्वारा लागू होनी थी। (यीशु के लहू और मृत्यु के इस पहलू की पूरी चर्चा के लिए इब्रानियों 9:15-22 भी देखें।) क्यों? इस वचन में एक और मुख्य विचार का अर्थात ''पापों की क्षमा के लिए'' का पता चलता है। जब नियम के अनुसार यीशु की मृत्यु हुई, तो यह इसलिए था ताकि क्षमा का साधन उपलब्ध करवाया जा सके। स्पष्टतया यूहन्ना 1:29 ने इसलिए ''परमेश्वर का मेमना जो जगत के पाप उठा ले जाता है!'' कहा। जिस प्रकार से इस्राएली लोग अपने पापों के प्रायश्चित की इच्छा में मेमनों तथा अन्य जानवरों का बलिदान करते थे, वैसे ही यीशु ने पापों के अन्तिम बलिदान के रूप में अर्थात जिसे कभी दोबारा देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह पूरी तरह से प्रभावकारी है (फिर से इब्रानियों 9) (देखें इब्रानियों 10:11-18; रोमियों 3:21-26) उसने अपना ही लहू चढ़ाया।

पापों की क्षमा दिलाने के लिए

आरम्भिक मसीही लोगों का मुख्य संदेश सही था कि ''पवित्र शास्त्र के वचन के अनुसार यीशु मसीह हमारे पापों के लिए मर गया'' (1 कुरिन्थियों 15:3)। नये नियम में इसे एक और तरह से व्यक्त किया गया है कि यीशु ने हमारे दोष और दण्ड को अपने ऊपर ले लिया। यह ऐसा है जैसा बलिदान के मेम्ने के रूप में परमेश्वर ने सारे जगत के पापों को उसके ऊपर लाद दिया हो, ताकि वह उन सब के लिए प्रायश्चित बन सके। 1 पतरस 2:24 यशायाह 53 के शब्दों को बाखूबी ढालकर इन्हें बड़ी इच्छी तरह व्यक्त करता है: ''वह आप ही हमारे पापों को अपनी देह पर लिए हुए क्रूस पर चढ़ गया जिससे हम पापों के लिए मर करके धार्मिकता के लिए जीवन बिताएं: उसी के मार खाने से तुम चंगे हुए।''

पाप के विचार से अलग यीशु की मृत्यु का अर्थ निकाला असम्भव है आज के संसार में पाप की आवधारणा मूलतया बाहरी है। यदि पाप पर विचार नहीं किया जाए तो यीशु की मात्र क्रूर निरंशसता होती। जब हम पाप पर विचार करते हैं तो हमें यीशु के मरने की आवश्यकता दिखाई दे सकती है।

मृत्यु पर विजय पाने के लिए

इतनी बड़ी-बड़ी अवधारणाएं भी यीशु की मृत्यु के अर्थ को खत्म नहीं कर सकती। रोमियों 5:12-21 में तर्क दिया कि यीशु हमारी ओर से मृत्यु पर विजय पाने के लिए मरा। हमारे लिए मृत्यु को सहकर और मुर्दों में से जी उठकर यीशु ने वह विजय पाई जिसमें हम सब को भाग लेने के लिए बुलाया जाता है। इब्रानियों 2:14, 15 के अनुसार इसका अर्थ यह है कि हमें न केवल

मृत्यु से छुड़ाया गया है बल्कि इसके भय से भी छुड़ाया गया है। दार्शनिक विलियम जेम्स ने कहा है कि मृत्यु ''प्रसन्नता के हमारे हर दावे के अन्दर बैठा एक कीड़ा है।'' वह धुंधला सा अनुमान सही है या नहीं पर नया नियम बड़े आनन्द से इस बात की घोषणा करता है कि यीशु के कारण हमें अब मृत्यु से डरने की आवश्यकता नहीं है।

व्यवस्था को पूरा करने और उसे हटाने के लिए

प्रेरित पौलुस ने कहा कि यीशु की मृत्यु हमें उससे जिसे उसने ''व्यवस्था का श्राप'' कहा, छुड़ाने के लिए थी (गलातियों 3:13, 14)। इसका अर्थ यह नहीं है कि पौलुस ने पुरानी वाचा को श्राप के रूप में देखा। बल्कि ''व्यवस्था का श्राप'' व्यवस्था को पूरा कर पाने की हमारी योग्यता और उस अयोग्यता के कारण मिलने वाला दण्ड है। व्यवस्था का प्रबन्ध हमें केवल तभी बचा सकता था यदि हम उन सब को पूरी तरह से पूरा करने के योग्य होते (याकूब 2:10, 11); वरना व्यवस्था अपने आप में हमारा न्याय करने के लिए हमारे विरोध में खड़ी है। व्यवस्था गलत काम करने से रोक सकती है पर वह गलतियां नहीं सुधार सकती; इसके बजाय वह हमें दोषी ठहराती है। पौलुस ने कहा कि क्रूस पर अपनी मृत्यु के द्वारा यीशु ने हमारे लिए कुछ ऐसा किया है जो व्यवस्था ''शरीर के कारण दुर्बल होकर न कर सकी।'' फिर ''[परमेश्वर ने] अपने ही पुत्र को पापमय शरीर की समानता में, और पाप के बलिदान होने के लिए भेजकर, शरीर में पाप पर दण्ड की आज्ञा दी'' (रोमियों 8:3)। हमारे लिए यीशु के मरने के द्वारा हमें ''व्यवस्था के श्राप'' से छुड़ाया जाता है। बेशक हम अपनी सामर्थ से परमेश्वर को प्रसन्न करने के अयोग्य है पर यीशु के लहू में विश्वास करने के द्वारा हम स्वतन्त्र हो सकते हैं।

नया जीवन देने के लिए

व्यवस्था से इस स्वतन्त्रता के साथ बड़ी नज़दीकी से जुड़ी ''पाप के लिए मरे हुए'' और यीशु की मृत्यु के द्वारा ''धार्मिकता के लिए जीवित'' होने के लिए अवधारणा है। रोमियों 6:1–4 में पौलुस ने इस प्रश्न का कि यीशु के द्वारा परमेश्वर का अनुग्रह दिए जाने का अर्थ यह है कि नहीं कि हम ''पाप करते रहें ताकि अनुग्रह बहुत हो'' जवाब दिया। उसने उत्तर दिया, ''कदापि नहीं!'' (''परमेश्वर न करे!''; KJV) क्यों नहीं। पौलुस ने आगे कहा,

> क्या तुम नहीं जानते, कि हम जितनों ने मसीह यीशु का बपतिस्मा लिया, तो उस की मृत्यु का बपतिस्मा लिया? सो उस मृत्यु का बपतिस्मा पाने से हम उसके साथ गाड़े गए, ताकि जैसे मसीह पिता की महिमा के द्वारा मरे हुओं में से जिलाया गया, वैसे ही हम भी नए जीवन की सी चाल चलें (आयतें 3, 4)।

पौलुस ने कहा कि न केवल यीशु *हमारे* लिए मरा बल्कि मरे हुओं में से उसके साथ जी उठने के पूर्वानुमान में हम भी बपतिस्मे के द्वारा उसकी मृत्यु में सहभागी हो सकते हैं। इब्रानियों 9:11–14 ऐसा ही विचार देता है:

> परन्तु जब मसीह आनेवाली अच्छी-अच्छी वस्तुओं का महायाजक होकर आया, तो उसने और भी बड़े और सिद्ध तम्बू से होकर जो हाथ का बनाया हुआ नहीं, अर्थात इस सृष्टि

> का नहीं। और बकरों और बछड़ों के लोहू के द्वारा नहीं, पर अपने ही लोहू के द्वारा एक ही बार पवित्र स्थान में प्रवेश किया, और अनन्त छुटकारा प्राप्त किया। क्योंकि जब बकरों और बैलों का लोहू और कलोर की राख अपवित्र लोगों पर छिड़के जाने से शरीर की शुद्धता के लिए पवित्र करती है। तो मसीह का लोहू जिसने अपने आपको सनातन आत्मा के द्वारा परमेश्वर के साम्हने निर्दोष चढ़ाया, तुम्हारे विवेक को मरे हुए कामों से क्यों न शुद्ध करेगा, ताकि तुम जीवते परमेश्वर की सेवा करो।

हमारे लिए नमूना ठहराने के लिए

यीशु के मरने का एक और कारण धर्म के काम करते हुए अधर्म से दुख पाने के लिए हमारे लिए एक नमूना छोड़ना भी है। दुख उठाना केवल गलत काम करने से ही नहीं होता बल्कि कई बार लोग दुख इसलिए उठाते हैं क्योंकि वे सही काम करने पर अड़े होते हैं। यीशु के मरने का मुख्य कारण यह तो नहीं था पर इसने उसके अनुयायियों के लिए जिन्हें अविश्वासी संसार के विरोध का सामना करना पड़ना था एक ज़बर्दस्त उदाहरण दिया। यह आज के लोगों के लिए भी उदाहरण है। पतरस ने लिखा,

> ... मसीह भी तुम्हारे लिए दुख उठाकर, तुम्हें एक आदर्श दे गया है, कि तुम भी उसके चिह्न पर चलो। न तो उसने पाप किया, और न उसके मुंह से छल की कोई बात निकली। वह गाली सुनकर गाली नहीं देता था, और दुख उठाकर किसी को भी धमकी नहीं देता था, पर अपने आपको सच्चे न्यायी के हाथ में सौंपता था। वह आप ही हमारे पापों को अपनी देह पर लिए हुए क्रूस पर चढ़ गया जिससे हम पापों के लिए मर करके धार्मिकता के लिए जीवन बिताएं: उसी के मार खाने से तुम चंगे हुए (1 पतरस 2:21-24)।

नया नियम यीशु की मृत्यु के और कारण भी बताता है, पर आरम्भिक मसीही लोगों की सोच के झुकाव को दिखाने के लिए यही काफ़ी है। याद रखें कि यह विश्वासियों के केवल विचार ही नहीं हैं कि यीशु ने उनके लिए क्या किया और वह क्यों मरा। उसके अपने शब्दों में इस सब बातों का आधार है: ''क्योंकि यह वाचा का मेरा वह लोहू है, जो बहुतों के लिए पापों की क्षमा के निमित्त बहाया जाता है'' (मत्ती 26:28)। वे हमें यीशु की मृत्यु के बहुपक्षीय स्वभाव को समझने में सहायता करते हैं। उसका मारा जाना उलझन में पड़े धार्मिक जेलोतेसों का दुखद अन्त नहीं था। बल्कि यह सावधानीपूर्वक बनाई गई एक ऐसे व्यक्ति के बलिदान की योजना थी जिसने बहुतों के छुटकारे के लिए अपना जीवन दे दिया।

टिप्पणियां

[1]जोसेफस *वार्स* 2.9.2-3; *एंटिक्विटीस* 18.3.1. [2]सामान्य शब्द ''एंटी-सैमेटिक'' है परन्तु बहुत से यहूदी लोग ''सैमेटिक'' शब्द को अनादरपूर्ण मानते हैं, जिस कारण कम ठोकर देने वाले शब्द ''यहूदी विरोधी'' को प्राथमिकता दी गई है। [3]जोसेफस *वार्स* 2.466; 5.109-10; 6:71-79, 251-53.